THE TIMES OF INDIA

Date: 16-01-25

Why Indians Must Work Hard

No nation in economic transition has workers achieving work-life balance. The kerfuffles over working Sundays or 90-hour weeks are but outpourings of an elite minority

Somnath Mukherjee, [The writer is CIO of a wealth management firm.]

- National outrage about business leaders – most notably Infosys founder Narayana Murthy and L&T CEO SN Subrahmanyan – exhorting Indians to put in long working hours.
- Widespread concerns over gig labour, especially their work conditions and compensation.
- RBI maintaining tight monetary policy and hardening norms on personal credit in the face of economic slowdown.

Three seemingly disparate trends, independently unexceptionable at first principles level, yet intertwined by a basic dichotomy – sensibilities of India's tiny elite coming up against realities of India's status as a low middle-income country struggling to grow at a pace most Asian peers did several decades ago.

Work-life balance, high levels of worker rights and high macroeconomic stability are all desirable outcomes – but nearly all societies and nations fell far short of those standards during economic transitions. While recent experience of fast economic change is largely in Asia, the same exceptions have been the rule even in the West during the Industrial Revolution of the 18th and 19th centuries.

Long work hours have long been an Asian norm. China has the 996 Working Hour System – employees work from 9am to 9pm, 6 days a week – 72 hours a week. In Japan, a 2016 govt survey showed nearly a quarter of companies required employees to put in more than 80 hours of overtime a month, and the average Japanese worker didn't avail 10 of her paid vacation days. It's a trend normal across East Asia, especially after WW2 when the region embarked on its spectacular growth trajectory. Results have been phenomenal – in about four decades, the region became the world's largest economic engine after US, with several countries graduating to 'rich' status – per capita income higher than $13,000 – and others close to that level.

Similarly, labour wage repression owes its origins to Europe's Industrial Revolution. Smokestacks across great European cities were operated by workers in appalling conditions who were paid a small part of the enormous economic value added by the enterprise.

Charles Dickens captured that angst in Hard Times: "Any capitalist...who had made sixty thousand pounds out of sixpence, always professed to wonder why the sixty thousand nearest hands didn't each make sixty thousand pounds out of sixpence." This was despite Europe's access to capital seized from its colonies. Circumstances remained dour even a century on, as the Industrial Revolution made its way to the other side of the Atlantic. Charlie Chaplin, as the iconic Little Tramp in Modern Times, depicted the dehumanising effects of modern industry.

Cut to the 20th century, and the trend remained the same in substance, this time in Asia. Through the 1960s, 1970s and 1980s, real wages in East Asia barely went up, even as economies grew at 'tiger' rates – state policy and sometimes direct intervention kept labour wages low. The trend reversed only in the 21st century, when most countries had reached substantial levels of prosperity.

India's financial services architecture reveals a similar reach for first-world levels. Monetary policy framework around inflation targeting, curbs on fiscal excesses via FRBM, ultra-conservative banking regulation – regulatory approach aims for macro-stability and risk-aversion, with growth sought to be enabled as an outcome of the former rather than an independent objective by itself.

Regulatory conservatism has percolated deep into private corporate behaviour. India Inc is generally conspicuous in its frugal approach towards capital, focus on Return on Capital Employed (ROCE) and risk-optimisation. In contrast, post-WW2, East Asia saw a high investment model of growth, invariably getting into boom-bust cycles and generally inferior to India ROCE profiles.

Final outcomes? While macro growth at low base years (per capita incomes) was very high, returns from markets for financial investors were decidedly poor. China is a great case in point, its stock market made very little for investors even as its economy showed the most breathtaking long-term growth ever seen.

In short, India's caught between an instinct to preserve work-life balance, extensive labour protection, and, risk-free approach to preserving macrostability. All of these in some way hold back a drive towards maximising growth.

In a democracy, popular demands drive certain policy choices. Expansive welfare programmes, for instance, are clearly electorally seductive. None of the three trends noted here are matters of mass conversation.

On the contrary, they represent elite sensibility that's sometimes reflected in policymaking. Choices made as a society and polity aren't necessarily via contests of political choice, but sometimes via contests of political correctness.

Economist Joan Robinson's "everything about India and its opposite are true" is an enduring cliché. In some ways, the politically correct Opposite is a binding constraint on the Everything of pulling Indians up the ladder quicker.

दैनिक भास्कर

Date: 16-01-25

बांग्लादेश सीमा पर भी सतर्कता बढ़ानी होगी

संपादकीय

एक समय सहोदर रहे बांग्लादेश से तमाम कोशिशों के बावजूद संबंध कटु होते जा रहे हैं। ढाका के नए हुक्मरानों की पाकिस्तान से दोस्ती नई दिल्ली की चिंता बढ़ा सकती है। हमारा एक और पड़ोसी धार्मिक कट्टरपंथ की ढलान पर चल पड़ा है। इन दोनों इस्लामी पड़ोसियों के बीच अभी तक एक अंतर था। पाकिस्तान जिन्ना के मरने की बाद से ही कट्टरवाद और अंततः सैनिक जेहादी तंजीमों के मकड़जाल में सिकुड़ता गया। लिहाजा बच्चों के हाथ में साइंस की किताबें देने की जगह उन्हें कट्टरता का पाठ पढ़ाया गया। इस्लामिक स्टेट के रूप में संस्थाओं और सोच पर कट्टरपंथियों का कब्जा बढ़ता रहा। पहले अमेरिका से और बाद में इस्लामिक अरब देशों से और अब चीन से मदद की बैसाखी पर जिंदा रहने वाला यह मुल्क सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक जड़ता का शिकार होता रहा। इसके ठीक उलट बांग्लादेश काल-खंडों में सैनिक शासन और इस्लामिक स्टेट होता हुआ सामाजिक सोच के स्तर पर अपेक्षाकृत उदार बना रहा। इसमें मुजीब जैसे नेताओं के अलावा भारत को अपना आदर्श समझने की सामाजिक-राजकीय सोच का भी बड़ा हाथ था। यही कारण था कि आर्थिक ही नहीं मानव विकास के तमाम पैरामीटर्स पर यह देश आगे रहा। बहरहाल अब भारत को एक और सीमा पर सतर्कता बढ़ानी होगी।

दैनिक जागरण

Date: 16-01-25

फर्जी खबरों से निपटने की कठिन चुनौती

सृजन पाल सिंह, (कलाम सेंटर के सीईओ लेखक पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम के सलाहकार रहे हैं)

फेसबुक, इंस्टाग्राम और वाट्सएप की प्रवर्तक कंपनी मेटा ने हाल में एलान किया कि वह अपने थर्ड पार्टी फैक्ट-चेकिंग कार्यक्रम को बंद कर रही है। मेटा भी अब एक्स (पूर्ववर्ती ट्विटर) जैसी 'कम्युनिटी नोट्स' वाली प्रणाली अपनाएगी। मेटा के इस निर्णय ने गलत सूचनाओं से निपटने में ऐसे माडल की क्षमता को लेकर बहस छेड़ दी है। खासकर भारत जैसे विविधतापूर्ण और

विशाल जनसंख्या वाले लोकतंत्र में यह सवाल और महत्वपूर्ण हो जाता है। फैक्ट चेकिंग बंद करने के पीछे मेटा की दलील है कि ऐसे प्रयास फैक्ट-चेकर्स के राजनीतिक पक्षपात से मुक्त नहीं हो सकते। सवाल है कि क्या कम्युनिटी चेकिंग इस समस्या का समाधान है? शायद नहीं। किसी समाचार की सच्चाई परखने में कौशल, अनुभव और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सामूहिक राय जैसी दिखने वाली किसी प्रणाली के आधार पर सत्य का निर्धारण नहीं हो सकता, क्योंकि यहां तो कोई भी फैक्ट-चेकर बन सकता है। यहीं पर हमें मुख्यधारा के मीडिया की भूमिका और सत्य को असत्य से अलग करने में उसकी क्षमता पर ध्यान देना होगा। यह भारत के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि हमारे यहां मीडिया की एक पुरानी परंपरा है। इसमें प्रिंट, टेलीविजन एवं उनके आनलाइन माध्यम शामिल हैं। हमारे पारंपरिक मीडिया का उद्भव एवं विकास आंतरिक आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है। वह संघर्षों में तपकर निखरा है। वह देश के स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष का सहभागी रहा है। उसने उत्पीड़न के खिलाफ समय-समय पर मुखरता से मोर्चा संभाला है। मुख्यधारा का मीडिया ही लंबे समय से सूचनाओं के प्रसार का विश्वसनीय आधार रहा है।

विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों, चैनलों और उनके वेब माध्यमों वाले पारंपरिक मीडिया की पहुंच बेजोड़ है। यह व्यापक नेटवर्क दूरदराज तक समाचार-सूचनाएं पहुंचाकर जनता में जागरूकता बढ़ाकर उसकी लोकतांत्रिक भागीदारी को सशक्त करता है। स्वस्थ समाज एवं प्रखर लोकतंत्र के लिए मुख्यधारा के मीडिया की भूमिका ऐसी है कि कथित सोशल नेटवर्क की आड़ में इंटरनेट मीडिया का चोला धारण करने वाली कंपनियां कभी उसका स्थान नहीं ले सकतीं।

भारत के संदर्भ में मुख्यधारा के मीडिया की महत्ता और बढ़ जाती है। भारत की विविधता यूरोप महाद्वीप जितनी ही है। जहां यूरोप के 44 देशों में 24 आधिकारिक भाषाएं हैं, वहीं एक भारत में ही 22 आधिकारिक भाषाएं हैं। यूरोप की तुलना में हमारी आबादी भी लगभग दोगुनी है। भारत की संस्कृति और जनसांख्यिकी विविधता का उसके लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ता है। इस विविधता के सार को समझने के लिए हमें मुख्यधारा के मजबूत मीडिया की आवश्यकता है, जो स्थानीय मुद्दों और भाषाओं में प्रवीण हो। यह काम सोशल मीडिया कहे जाने वाले इंटरनेट मीडिया प्लेटफार्म को आउटसोर्स नहीं किया जा सकता। याद रहे कि इंटरनेट मीडिया जमीनी एवं तथ्यपरक रिपोर्टिंग के बजाय तीव्र प्रतिक्रिया को बढ़ावा देने वाला साधन है। इस पर अधिकतर समाचार 'ट्रेंडिंग' अपसंस्कृति के शिकार होते हैं। इन पर सक्रिय कंटेंट क्रिएटर्स का ध्यान सिर्फ वायरल होने वाले कंटेंट बनाने पर रहता है। उनके पास यह जांचने की योग्यता एवं कौशल नहीं होता कि कोई समाचार कितना सच है। जैसे पिछले माह एक पोस्ट वायरल हुई जिसमें दिखाया गया कि भारत में एक मस्जिद में आग लगाई जा रही है। हालांकि विशेषज्ञों की पड़ताल में पता चला कि वीडियो इंडोनेशिया का था और तनाव बढ़ाने के लिए उसे जानबूझकर गलत तरीके से पेश किया गया था। शरारत के जरिये माहौल बिगाड़ने के ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनका हम केवल पारंपरिक पत्रकारिता की ताकत से मुकाबला कर सकते हैं।

वायस क्लोनिंग और डीप फेक जैसे नवीनतम एआइ टूल्स ने इंटरनेट मीडिया को और बेलगाम बना दिया है। यहां किसी भी व्यक्ति की आवाज, चित्र और वीडियो से छेड़छाड़ कर कोई भी दुष्प्रचार किया जा सकता है। इंटरनेट पर ऐसी तमाम साइट्स हैं जिनके माध्यम से कोई नौसिखिया भी फेक कंटेंट बना सकता है। ऐसी सामग्री बहुत तेजी से तैयार हो रही है। एक्स और इंस्टाग्राम पर ब्लूटिक खरीदने के बाद कोई हैंडल हूबहू कापी किया जा सकता है। इससे कंटेंट क्रिएशन को लेकर भ्रम की आशंका बढ़ी है। इस पर अंकुश के उपाय सीमित एवं व्यापक रूप से अप्रभावी हैं। इंटरनेट मीडिया जवाबदेही के स्तर पर भी शून्य है। जबकि मुख्यधारा के मीडिया की पूंजी ही विश्वसनीयता है तो वह जवाबदेही को लेकर कोई समझौता नहीं करता। उसके किसी कृत्य को लेकर देश के कानूनों के दायरे में शिकायत भी की जा सकती है,

लेकिन इंटरनेट मीडिया कंपनियां तो ऐसे कानूनी दायरे से ही बाहर हैं, क्योंकि उनका व्यापक परिचालन देश के बाहर से हो रहा है।

यह विषय राष्ट्रीय संप्रभुता से भी जुड़ा हुआ है। जब हम किसी इंटरनेट मीडिया कंपनी के विदेश स्थित फैक्ट-चेकर्स या कम्युनिटी संचालित फैक्ट-चेकिंग पर भरोसा करते हैं, तो हम समाचारों को सत्यापित करने की अपनी क्षमता को एक एल्गोरिदम या एआइ के हवाले कर देते हैं। यह एआइ भारतीयों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता। इस एआइ में विदेशी प्रभाव के कारण हेरफेर किया जा सकता है। इसका ध्येय अक्सर हमारे राष्ट्रीय हितों को अस्थिर करने, भ्रमित करने और नुकसान पहुंचाना हो सकता है। यही कारण है कि लोकतंत्र को एक मजबूत, स्वतंत्र, स्वदेशी और आत्म-सुधार वाले चौथे स्तंभ की आवश्यकता सदैव रहेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि सूचनाओं के प्रसार और सामुदायिक संवाद को बढ़ावा देने में इंटरनेट मीडिया प्लेटफार्मों ने अहम भूमिका निभाई है, लेकिन उनमें फर्जी खबरों की बाढ़ के चलते वे कभी मुख्यधारा के मीडिया का स्थान नहीं ले सकते। परंपरागत मीडिया अपने समृद्ध इतिहास और पत्रकारीय नैतिकता के प्रति प्रतिबद्धता के साथ गलत सूचनाओं के ज्वार के विरुद्ध एक ढाल के रूप में कार्य करता है। भारत जैसे जीवंत और जटिल लोकतंत्र में डिजिटल प्लेटफार्म और पारंपरिक मीडिया के बीच तालमेल एक सूचित और प्रबुद्ध समाज का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 16-01-25

क्रूर अपेक्षा

संपादकीय

कभी-कभी किसी विशिष्ट व्यक्ति के मुंह से कुछ इस तरह के बयान निकल कर बाहर आ जाते हैं जिनके बारे में तय करना मुश्किल हो जाता है कि इन्हें गंभीर मान कर इन पर समुचित ध्यान दिया जाए या हास्यास्पद मान कर दरकिनार कर दिया जाए। पिछले दिनों लार्सन एंड टूब्रो (एल एंड टी) के चेयरमैन एस. एन. सुब्रमण्यम ने जो बात कही उस पर पूरे देश में प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपने कर्मचारियों की बैठक में कहा कि कर्मचारियों को सप्ताह में 90 घंटे और रविवार को भी काम करना चाहिए। अपनी पत्नियों का मुंह निहारने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। इससे पहले इंफोसिस के मालिक नारायण मूर्ति भी कर्मचारियों से सप्ताह में 70 घंटे काम करने का आह्वान कर चुके हैं। अगर इन टिप्पणियों को सचमुच गंभीरता से लिया जाए तो ये बहुत क्रूरता, नासमझी और असंवेदनशीलता से भरी हुई टिप्पणियां हैं। इनका निहित भाव यह है कि कर्मचारी न अपने परिवार पर ध्यान दें, न दोस्तों, मित्रों और रिश्तेदारों से संपर्क रखें और अपने सामाजिक जीवन को त्याग दें। भारत जैसे देश में जहां शिक्षित बेरोजगारों की दर बहुत ज्यादा है, और जिन्हें रोजगार मिला भी हुआ है, उन्हें भी अपने श्रम के अनुकूल वेतन नहीं मिलता। एक आंकड़े के अनुसार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रोजगाररत लोगों में से 67 फीसद ऐसे हैं जो कार्य संबंधी कारणों से तनावग्रस्त रहते हैं जिससे उनके परिवारों में भी

तनावग्रस्त वातावरण बन जाता है। तिस पर कार्यस्थलों का वातावरण उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनशील और समझदारी भरान हो तो उनकी समस्याएं और अधिक बढ़ जाती हैं। ऐसे में उनसे सप्ताह में 90 घंटे कार्य करने की अपेक्षा करना उनकी सामाजिक और पारिवारिक जिंदगियों को नर्क में झोंक देने जैसा है। आजकल तो ऐसे भी संस्थान हैं जो अपने बड़े-बड़े अधिकारियों को ज्यादा वेतन इसलिए देते हैं कि वे छोटे कर्मचारियों का शोषण करें। वास्तव में बहस इस पर होनी चाहिए कि संस्थाओं में कर्मचारियों को उत्पादनक्षम वातावरण कैसे मिले जिससे पारिवारिक तथा व्यावसायिक जीवन में संतुलन आए न कि उनसे 90 घंटे काम करने की अपेक्षा की जाए। हालांकि अब एल एंड टी की एचआर हेड ने अपने चेयरमैन का बचाव करते हुए कहा है कि उनके बयान को गलत संदर्भ में लिया गया है। लेकिन सच तो यह भी है कि जब बात निकली है तो दूर तलक जाएगी।

Date: 16-01-25

काम के घंटे घटाना वक्त की मांग

कुमार समीर

इंफोसिस के सह-संस्थापक नारायण मूर्ति ने एक साल पहले युवाओं को हफ्ते में 70 घंटे काम करने की सलाह दी थी और अब निर्माण कंपनी लार्सन एंड टुब्रो (एल एंड टी) के अध्यक्ष एस. एन. सुब्रमण्यम ने अपने कर्मचारियों से कहा है कि कामगारों को हफ्ते में 90 घंटे काम करने को तैयार रहना चाहिए। इतने पर ही नहीं रुके, आगे कहा कि एक्स्ट्रा रिजल्ट के लिए एक्स्ट्रा काम करना होगा और इसके लिए रविवार को भी काम करना चाहिए। आखिर, घर में रह कर मजदूर बीवी का मुंह कितनी देर तक निहारते रहेंगे। अदानी ग्रुप के अध्यक्ष गौतम अदानी ने भी उनकी बातों का समर्थन करते हुए कहा कि अगर काम ही नहीं रहा तो बीवी घर से भाग जाएगी और फिर क्या होगा ?

एल एंड टी के चेयरमैन के बयान के बाद देश में फिर से मजदूरों के काम के घंटे को लेकर बहस शुरू हो गई है। कॉरपोरेट जगत के अंदर भी इसका विरोध हो रहा है। आरपीजी ग्रुप के चेयरपर्सन हर्ष गोयनका ने एल एंड टी चेयरमैन के बयान की आलोचना करते हुए कहा, एक हफ्ते में 90 घंटे काम? रविवार को 'सन ड्यूटी' क्यों न कहा जाए और 'छुट्टी' को एक मिथकीय अवधारणा क्यों न बना दिया जाए! वर्क-लाइफ बैलेंस वैकल्पिक नहीं, बल्कि जरूरी है। यह भी सवाल उठाया जा रहा है कि जब भारत में पहले से ही लोग सबसे ज्यादा काम करते हैं, तो क्यों कामगारों के घंटे बढ़ाने की बात उठती रहती है? अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 10 सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में भारतीय सबसे ज्यादा काम करते हैं। रिपोर्ट के अनुसार, भारत में प्रति सप्ताह 46.7 घंटे, चीन में 46.01, ब्राजील में 39, अमेरिका में 38, जापान में 36.6, इटली में 36.3, ब्रिटेन में 35.5, फ्रांस में 35.9, जर्मनी में 34.2 और कनाडा में 32.5 घंटे मजदूरों से काम कराया जाता है। इन आंकड़ों के बावजूद भारत में काम के घंटे बढ़ाने के लिए जब-तब शिगूफा छोड़ा जाता रहा है।

सच तो यह है कि पूरी बहस को इसलिए संचालित किया जा रहा है ताकि मोदी सरकार द्वारा मार्च, 2025 में लाए जाने वाले लेबर कोड, जिसमें काम के घंटे 12 कर दिए जाने हैं, की सामाजिक स्वीकृति हासिल की जा सके। इसके लिए बीच-बीच में इस तरह की चर्चाएं शुरू करवाने का ताना-बाना बुना जाता है। सच तो यह है कि दुनिया में काम के घंटे बढ़ाने

के तर्कों के विरुद्ध आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस के दौर में काम के घंटे कम करने की कवायद - कार्रवाई हो रही है। तमाम देशों में सप्ताह में चार दिन काम की पद्धति शुरू हुई है। जूम के मालिक एरिक युवान जैसे एआई इनोवेटर्स का मानना है कि एआई हर कंपनी के लिए चार दिन का कार्यसप्ताह हासिल करने की कुंजी होगा। उनके अनुसार चार दिन के वर्किंग में 92 प्रतिशत की सफलता दर है । जापान जैसे देशों में काम के घंटे लगातार कम किए जा रहे हैं। साउथ चाइना मॉर्निंग पोस्ट की एक रिपोर्ट के अनुसार, जहां जापान में वर्ष 2000 में 1839 घंटे सालाना काम के थे वहीं उसे 2022 में घटा कर 1629 घंटे सालाना कर दिया गया। इससे लगभग वार्षिक काम के घंटे में 11.6 प्रतिशत की गिरावट आई। बेल्जियम, आइसलैंड, यूएई, स्पेन और नीदरलैंड जैसे देशों में चार दिन के कार्य दिवस सप्ताह में कर दिए गए हैं। जापान की रिक्रूट वर्क्स इंस्टिट्यूट के विश्लेषक ताकाशी सकामोटो के निष्कर्ष के अनुसार, देश में अब कई यूरोपीय देशों की तरह काम के घंटे कम किए जा रहे हैं।

ऑटोनॉमी की एक रिपोर्ट के अनुसार, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आने के बाद ब्रिटेन में 88 प्रतिशत कंपनियां अपने कर्मचारियों के काम के घंटे 10 प्रतिशत तक कम कर रही हैं यानी कुल मिला कर कहा जाए तो दुनिया में काम के घंटे कम करने की दिशा में काम हो रहा है वहीं भारत, जहां पहले से ही काम के घंटे ज्यादा हैं, में उन्हें बढ़ाने की वकालत की जा रही है। दरअसल, देश में भीषण बेरोजगारी और महंगाई में मजदूरों की मजबूरी का फायदा उठा कर काम के घंटे 12 करने का कानून बनाया जा रहा है। दुखद यह है कि इस सबसे उत्पादन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। संवैधानिक दृष्टि से देखें तो काम के घंटे बढ़ाने को जो कुछ भी किया जा रहा है, वह स्पष्ट तौर पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21, 42 और 43 का उल्लंघन है। हमारे संविधान की प्रस्तावना में ही व्यक्ति की गरिमा की बात कही गई है, जिसकी मौलिक अधिकार और नीति-निर्देशक तत्वों में व्याख्या की गई है। अनुच्छेद 42 जहां काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं के लिए राज्य की जवाबदेही तय करता है वहीं अनुच्छेद 43 मजदूरों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और अवकाश की संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त करने के लिए राज्य को जिम्मेदार बनाता है। आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस के दौर में जब दुनिया बड़े पैमाने पर बेरोजगारी के खतरे को महसूस कर रही है, तब भारत में काम के घंटे बढ़ाने के कारण बेरोजगारी और भी बढ़ेगी, यह तय है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 16-01-25

मेटा की माफी

संपादकीय

मेटा इंडिया कंपनी को अपने सीईओ मार्क जुकरबर्ग के एक बयान के लिए माफी मांगनी पड़ी है, तो यह जरूरी भी था और स्वागतयोग्य भी है। पिछले सप्ताह फेसबुक के मालिक के नाते ख्यात मार्क जुकरबर्ग ने यह कह दिया था कि कोविड-19 के चलते भारत सहित ज्यादातर देशों में सरकारों को हार का मुंह देखना पड़ा। इस बयान की भारत में तीखी आलोचना हो रही थी कि जुकरबर्ग ने गलत बयानी की है। भारत में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सत्तारूढ़ गठबंधन को जीत

मिली है। और वह तीसरी बार प्रधानमंत्री बनने में कामयाब हुए हैं। भारत की आपत्ति के बाद जुकरबर्ग ने स्वयं तो नहीं, पर उनकी कंपनी मेटा ने माफी मांगते हुए इसे 'अनजाने में हुई गलती' कहा है। क्या यह मान लिया जाए कि यह गलती अनजाने में हुई है? क्या विशाल सोशल मीडिया मंच फेसबुक को संभालने वाली इतनी बड़ी कंपनी के मालिक को यह शोभा देता है कि वह भारत जैसे देश के चुनाव परिणाम से परिचित न हों? अगर यह गलती जुकरबर्ग से अनायास या अनजाने में हुई है, तो भी यह गंभीर बात है। यह बात तो साफ है कि वह भारत को लेकर सजग नहीं हैं।

मेटा इंडिया भी जुकरबर्ग की ही कंपनी है, जिसके एक आला अधिकारी ने कहा है कि अमेरिकी बहुराष्ट्रीय प्रौद्योगिकी समूह मेटा के लिए भारत एक अविश्वसनीय रूप से महत्वपूर्ण देश बना हुआ है। अगर मेटा के लिए भारत खास है, तो इसके मालिक को भारत का नाम संभलकर लेना चाहिए। वैसे भी भारत सरकार अमेरिका, यूरोपीय देशों या चीन की तरह आक्रामक नहीं है। आक्रामक देशों में तो सरकारें फेसबुक या मेटा की गलतियों पर चारों ओर से टूट पड़ती हैं। कई बार ऐसी गलतियों के चलते कंपनियों को भारी जुर्माना भी चुकाना पड़ता है। उन देशों की कड़ाई का ही नतीजा है कि सोशल मीडिया कंपनियां इन देशों में बहुत सजग रहती हैं, जबकि भारत के मामले में उनकी नीति बदल जाती है भारत की उदारता का ये कंपनियां अधिकतम दुरुपयोग करना चाहती हैं। जुकरबर्ग से जुड़े ताजा मामले को एक सबक के रूप में लेना चाहिए। साथ ही, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिकों और अधिकारियों को साफ शब्दों में सचेत कर देना चाहिए कि वे भारत के महत्व को समझें व पर्याप्त सजग रहें। भारतीयों को पता है कि साल 2019 में अमेरिका में फेडरल ट्रेड कमीशन ने उपयोगकर्ता की गोपनीयता का उल्लंघन करने के लिए फेसबुक पर पांच अरब डॉलर का जुर्माना लगाया था। कोई दोराय नहीं कि ऐसी कंपनियों पर कड़ी नजर रखना समय की मांग है।

एक खास बात यह है कि फेसबुक के मालिक को स्वयं ही गलत दावे करते या गलत बयानी करते देखा गया है। इसका दूसरों पर क्या असर होगा? फेसबुक या अन्य सोशल मंचों पर बहुत सारी फेक या फर्जी सूचनाएं तैरती रहती हैं और भारत में तो शायद कुछ ज्यादा ही मनगढ़ंत या झूठी सूचनाओं का प्रचार संचार होता है। सूचनाओं की सच्चाई के प्रति जिम्मेदारी का भाव सभी में होना चाहिए। एक आम नागरिक को भी सजग रहना चाहिए कि उसके मार्फत कोई गलत सूचना संचारित-प्रसारित न हो और जुकरबर्ग जैसे मालिकों को भी यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके अधीन चल रहे सोशल मीडिया मंचों पर किसी झूठ का सिक्का न चले। सूचनाओं की सच्चाई के प्रति सभी को गंभीर होना चाहिए और झूठ फैलाने वाले लोगों से हर स्तर पर बचने की जरूरत है।